चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, जरिए सचिव/महाप्रबंधक एवं अन्य

बनाम

रघुनाथ सिंह राणा एवं अन्य

(दीवानी अपील संख्या 2265/2011)

17 मई, 2016

[अभय मनोहर सप्रे और अशोक भूषण न्यायाधिपतिगण]

सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - जांच न करना - सेवा से बर्खास्तगी का प्रभाव - रिट याचिका में चुनौती - उच्च न्यायालय द्वारा बर्खास्तगी आदेश रद्द - अपील पर। कहा गया: सेवा नियमों के अनुसार जांच करना अनिवार्य था - इस प्रकार, विशिष्ट वैधानिक नियमों के मद्देनजर, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आज्ञापक था - अनुशासनात्मक कार्यवाही और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को संचालित करने वाले वैधानिक प्रावधानों का पालन किए बिना संचालित - वर्तमान मामले के तथ्य बताते हैं कि कोई जांच नहीं की गई थी - इसलिए, उच्च न्यायालय के द्वारा बर्खास्तगी आदेश को रद्द किया जाना सही था - नियोक्ता नए सिरे से अनुशासनात्मक जांच के साथ आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र है - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियां कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 - पंजीकरण 85- प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत।

न्यायालय के द्वारा अपील खारिज करते हुये अभिनिर्धारित किया गया।

1. उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 का विनियम 85 एक वैधानिक विनियम है, जिसके अनुसार कर्मचारी को अपने बचाव में गवाहों को अपने खर्च पर पेश करने या उनसे जिरह करने का अवसर दिया जाएगा तथा यदि वह चाहे तो व्यक्तिगत रूप से भी सुना जा सकता है। विनियमन 85 (i)(बी) विशेष रूप से उक्त आवश्यकताओं को अनिवार्य करता है। (Para-14) (94-E-F)

2. जांच करना अनिवार्य था और बिना जांच किए और कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को कोई जांच रिपोर्ट दिए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी कोई दंड देने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। अपीलकर्ता-बैंक द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन केवल औपचारिकता नहीं है, खासकर तब जब वैधानिक प्रावधान विशेष रूप से यह उपबंध करते हैं कि अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की उचित पालना के साथ आयोजित की जाएगी। यहां तक कि जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की पालन वाले कोई विशिष्ट वैधानिक नियम नहीं हैं, तो भी प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है। (Para-18, 19) (95-C-D)

सुर इनेमल एंड स्टैम्पिंग वर्क्स प्रा. लिमिटेड बनाम उनका कर्मकार **(1964) 3 SCR 616;** भारतीय स्टेट बैंक बनाम आर.के. जैन और अन्य. **1972 (1) SCR 755 (1972) 4 SCC 304;** उत्तरांचल राज्य एवं अन्य

बनाम खड़क सिंह 2008 (12) **SCR** 54: (2008) 8 **SCC** 236; ECIL बनाम बी. करुणाकर 1993 (2) **Suppl. SCR** 576: (1993) 4 **SCC** 727; राधेश्याम गुप्ता बनाम उ.प्र. राज्य कृषि उद्योग निगम लिमिटेड और अन्य 1998 (3) **Suppl. SCR** 558: (1999) 2 **SCC** 21; सिंडिकेट बैंक और अन्य बनाम वेंकटेश गुरुराव कुराती 2006 (1) **SCR** 920: (2006) 3 **SCC** 150 पर भरोसा किया।

3. नियोक्ता बैंक के किसी कर्मचारी पर कोई दण्ड अधिरोपित करना, वह भी सेवा से बर्खास्तगी का बड़ा दण्ड, अनुशासनात्मक कार्यवाही को संचालित करने वाले वैधानिक प्रावधानों का पालन करने के बाद ही दिया जा सकता है। (Para-17) (95-A)

4. दलीलों और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों से, यह स्पष्ट है कि दिनांक 16.01.1993 को आरोप-पत्र जारी होने के बाद नियोक्ता-बैंक द्वारा विनियमन 85 (i) (बी) के अनुरूप कोई जांच नहीं की गई थी। उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद बर्खास्तगी आदेश को रद्द कर दिया है कि बिना जांच किए कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को बर्खास्त कर दिया गया है। अपील में यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं लाई गई है कि दिनांक 16.01.1993 के आरोप-पत्र के बाद कोई जांच की गई थी या जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। (Para-15) (94-F-G)

5. उच्च न्यायालय ने बैंक को, यदि वह चाहे तो, छह महीने की अवधि के भीतर नए सिरे से जांच करने की छूट देकर बर्खास्तगी आदेश को सही ढंग से रद्द कर दिया है। बैंक उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसार अनुशासनात्मक जांच आगे बढ़ाने के लिए स्वतंत्र होगा। (Para-22) (101-D-E)

<u>प्रकरण के संदर्भ में कानून</u>

(1964) 3 SCR 616	भरोसा किया	Para 19
1972 (1) SCR 755	भरोसा किया	Para 20
2008 (12) SCR 54	भरोसा किया	Para 21
1993 (2) Suppl. SCR 576	भरोसा किया	Para 21
1998 (3) Suppl. 558	भरोसा किया	Para 21
2006 (1) SCR 920	भरोसा किया	Para 21

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या 2265/2011

उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल की रिट याचिका (एस/बी) संख्या 159/2002 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 01.12.2010 से।

सुब्रमण्यम प्रसाद, वरिष्ठ अधिवक्ता, नागेंद्र सिंह, विश्व पाल सिंह, हिमांशु पाल, अधिवक्तागण अपीलकर्ताओं की ओर से।

के.राघवचार्युलु, कैलाश पांडे, रणजीत सिंह, अरिंदम डे, हिमांशु नेलवाल, के.वी. श्रीकुमार, अधिवक्तागण प्रत्यर्थीगण की ओर से।

न्यायालय का निर्णय अशोक भूषण, न्यायाधिपति द्वारा पारित किया गया,

1. यह अपील उत्तराखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेश दिनांक 01.12.2010 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके फैसले के तहत प्रत्यर्थी-रघुनाथ सिंह राणा द्वारा दायर रिट याचिका में बर्खास्तगी आदेश दिनांक 01.02.2002 को अपास्त करते हुए निस्तारित किया गया। फैसले से व्यथित होकर, चमोली जिला सहकारी लिमिटेड ने इस न्यायालय के समक्ष अपील की है।

इस अपील पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य हैं: चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड (इसके बाद 'अपीलकर्ता/बैंक' के रूप में संदर्भित) यूपी सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1965 (इसके बाद इसे 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के तहत पंजीकृत एक जिला सहकारी बैंक है। प्रासंगिक समय पर प्रत्यर्थी नंबर 1 (इसके बाद 'कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1' के रूप में संदर्भित) रघुनाथ सिंह राणा, चमोली जिले की घाट शाखा में शाखा प्रबंधक के रूप में कार्यरत थे। कर्मचारी के विरूद्ध 19 आरोप लगाते हुए दिनांक 03.07.1992 को आरोप पत्र जारी किया गया। कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को 3 अगस्त, 1992 तक जवाब

देने के लिए कहा गया था। कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ आरोप था कि उसने बिना पूर्व वसूली के चेक धारकों को भुगतान कर दिया, जिससे अपीलकर्ता/बैंक को हानि हुई। आगे आरोप यह था कि उन्होंने संबंधित व्यक्तियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की और इस प्रकार गंभीर अनियमितताएं कीं। आरोपों का एक अन्य समूह यह था कि प्रत्यर्थी-कर्मचारी ने अधिनियम के प्रावधान के विरुद्ध ओवरड्राफ्ट/ऋण जारी किया है।

2. कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 31.07.1992 को आरोपों से इनकार करते हुए एक जावब प्रस्तुत किया। 05.8.1992 को जांच करने के लिए एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। जांच अधिकारी ने 21.09.1992 को एक रिपोर्ट भी प्रस्तुत की। कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांक 21.10.1992 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था। दिनांक 21.09.1992 की जांच रिपोर्ट पर कोई आगे कदम नहीं उठाया गया। हालाँकि, दिनांक 03.07.1992 के आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के साथ-साथ छह अतिरिक्त आरोपों वाला एक नया आरोप पत्र 16.01.1993 को जारी किया गया था। कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने आरोपों से इनकार करते हुए दिनांक 04.02.1993 को आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत किया। कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 द्वारा जवाब प्रस्तुत करने के बाद, याचिकाकर्ता को जिला सहकारी बैंक लिमिटेड द्वारा दिनांक 04.05.1993 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को

जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। ऐसा न करने पर यूपी सहकारी समितियां कर्मचारी सेवा विनियम अधिनियम, 1975 की धारा 84 के तहत कार्रवाई किया जाना था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 11.07.2000 को एक प्रस्ताव पारित किया कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं और आगे की कार्रवाई की जाएगी। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 01.02.2002 को एक आदेश पारित कर कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को तत्काल प्रभाव से बर्खास्त कर दिया। बर्खास्तगी आदेश से व्यथित होकर, कर्मचारी-प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें दिनांक 01.02.2002 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी, साथ ही प्रार्थना की गई थी कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को पूर्ण बकाया वेतन और भत्तों के साथ सेवा में बहाल किया जाए।

3. रिट याचिका में कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 का मामला यह था कि आरोप पत्र दिनांक 18.01.1993 की प्राप्ति के बाद, कर्मचारी द्वारा जवाब प्रस्तुत किया गया था, लेकिन जांच किए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिका को खारिज करने का निर्णय लिया। वैधानिक नियमों के अनुसार कोई जांच नहीं की गई, इसलिए, पूरी कार्यवाही अपास्त की जानी चाहिए।

4. अपीलकर्ता-बैंक ने रिट याचिका में जवाबी हलफनामा दायर किया। जवाबी हलफनामे में दिनांक 18.01.1993 के आरोप पत्र के बाद की किसी जांच रिपोर्ट का उल्लेख नहीं किया गया।

5. उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने मामले की सुनवाई की और दिनांक 01.12.2010 के फैसले से बर्खास्तगी आदेश को रद्द कर दिया। डिवीजन बेंच ने माना कि बिना जांच किए बर्खास्तगी आदेश पारित किए गए हैं, जो अपास्त किए जाने योग्य हैं।

6. अपीलकर्ता-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि जांच अधिकारी ने कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को दिनांक 11.09.1992 को एक पत्र जारी किया था, जिसमें कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को 18.09.1992 को सुबह 10.00 बजे उपस्थित होने के लिए कहा गया था, लेकिन कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 जांच में उपस्थित होने में विफल रहा, इसलिए, उच्च न्यायालय का मानना सही नहीं है कि कोई जांच आयोजित नहीं की गई। उन्होंने आगे कहा कि जांच रिपोर्ट दिनांक 21.09.1992 को जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई थी, जिसे संलग्न पी3 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। अपीलकर्ता-बैंक के विद्वान वकील ने आगे कहा कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 के खिलाफ गंभीर आरोप थे, जिसके आधार पर कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था।

7. आगे यह भी तर्क दिया गया है कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और आपराधिक मामले लंबित हैं।

8. हमने प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. उत्तर प्रदेश कॉपरेटिव सोसायटी कर्मचारी सेवा विनियम 1975 के तहत वैधानिक नियम बनाए गए, जो कर्मचारी प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच संचालित करने से संबंधित प्रक्रिया पर लागू होते हैं तथा प्रासंगिक समय पर लागू हो रहे थे। अध्याय-VII का विनियम 84 दंड से संबंधित है, विनियमन 85 अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित है, और विनियमन 86 अपील से संबंधित है। विनियम 85 जो अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित है, इस प्रकार हैः-

> "85. अनुशासनात्मक कार्यवाहीः- (i) किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही जांच अधिकारी (नीचे खंड (iv) में संदर्भित) द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उचित पालन के साथ की जाएगी, जिसके लिए यह आवश्यक होगा
>
> **(A)** कर्मचारी को एक आरोप पत्र दिया जाएगा जिसमें विशिष्ट आरोप होंगे और प्रत्येक आरोप के समर्थन में साक्ष्य का उल्लेख होगा और उसे उचित समय के भीतर आरोपों के

संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा जो पंद्रह दिनों से कम नहीं होगा;

(**B**) ऐसे कर्मचारी को अपनी लागत पर गवाह पेश करने या अपने बचाव में गवाहों से जिरह करने का अवसर भी दिया जाएगा और यदि वह चाहे तो व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर भी दिया जाएगा;

(**C**) यदि आरोप पत्र के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता है या प्रस्तुत स्पष्टीकरण असंतोषजनक है, तो सक्षम प्राधिकारी आवश्यक समझे जाने पर उसे उचित दंड दे सकता है।

(ii) (**A**) जहां किसी कर्मचारी को उस आचरण के आधार पर सेवा से बर्खास्त या हटा दिया जाता है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषी ठहराया गया है; या

(**B**) जहां कर्मचारी फरार हो गया है और उसका पता तीन महीने से अधिक समय से समाज को नहीं पता है; या

(सी) जहां कर्मचारी विशेष रूप से लिखित रूप में उपस्थित होने के लिए बुलाए जाने पर जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने से इनकार करता है या विफल रहता है; या

(**D**) जहां अन्यथा (रिकॉर्ड किए जाने वाले कारणों से) उसके साथ संवाद करना संभव नहीं है, सक्षम प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू किए बिना या जारी रखे बिना उचित दंड दे सकता है।

(iii) निरीक्षण प्राधिकारी या सोसायटी के किसी अधिकारी जिसके नियंत्रण में कर्मचारी काम कर रहा है, द्वारा इस आशय की रिपोर्ट पर कर्मचारी के खिलाफ सोसायटी द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी।

(iv) जांच अधिकारी की नियुक्ति, नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा या नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा इस उद्देश्य के लिए अधिकृत सोसायटी के किसी अधिकारी द्वारा की जाएगी:

परन्तु जिस अधिकारी के आदेश पर अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की गई थी, उसे जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा और न ही जांच अधिकारी अपीलीय प्राधिकारी होगा।

..........."

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथ्यों से यह स्पष्ट है कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को आरोप पत्र दिनांक 03.07.1992 जारी किया गया था, जिसका जवाब उसने

31.07.1992 को प्रस्तुत किया था। जाँच प्रतिवेदन दिनांक 21.09.1992 जारी कर प्रस्तुत किया गया। हालाँकि, दिनांक 21.09.1992 की जांच रिपोर्ट के आधार पर आगे बढ़ने के बिना, कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को 24 आरोपों वाली एक नई चार्जशीट दिनांक 18.01.1993 जारी की गई थी। कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को 15 दिनों के भीतर उत्तर प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। बाद के आरोप पत्र का जवाब कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 द्वारा 04.02.1993 को फिर से दायर किया गया था। दूसरा आरोप पत्र 18.01.1993 को जारी किया गया जिसमें वे सभी आरोप शामिल थे, जो पहले के आरोप पत्र में शामिल थे, दिनांक 03.07.1992 के आरोप पत्र के परिणामस्वरूप पिछली कार्यवाही रद्द कर दी गई थी। अपीलकर्ता-बैंक ने दिनांक 18.01.1993 के आरोप पत्र के आधार पर अनुशासनात्मक जांच को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया। 18.01.1993 के बाद कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 द्वारा 04.02.1993 को आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत किया गया था, लेकिन अपीलकर्ता-बैंक द्वारा लाए गए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है जो दर्शाती हो कि कोई जांच कार्यवाही आयोजित की गई थी।

11. यह दर्ज करना प्रासंगिक है कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 द्वारा दायर रिट याचिका में, विशिष्ट आधार दर्ज किए गए थे कि उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन

और विनियमन 85 में निर्धारित प्रक्रिया के खिलाफ की गई थी, जो रिट याचिका के पैराग्राफ 19 और 25 में निम्नलिखित आशय के कथन किए गए थे: -

> " 19. यह कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन में अपनाई गई पूरी प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और विनियमन 85 में उल्लिखित प्रक्रिया के खिलाफ है, वास्तव में, प्रत्यर्थीगण द्वारा नाम के लायक कोई जांच नहीं की गई है। तथाकथित जांच महज दिखावा थी। यह याचिकाकर्ता के वैधानिक अधिकारों के साथ खिलवाड़ और धोखाधड़ी है।"

25. कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के प्रावधानों और 1975 के विनियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नहीं की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा अपने जवाब दिनांक 31.07.1993, 04.02.1993 और 21.03.1993 के माध्यम से गंभीर आपत्तियाँ उठाई गईं लेकिन याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। एक बार याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी होने के बाद, उसी अनुशासनात्मक कार्यवाही में जांच अधिकारी द्वारा दूसरा आरोप पत्र नहीं भेजा जा सकता है। लेकिन जांच अधिकारी या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इस आपत्ति पर भी विचार नहीं किया गया। आरोप-पत्र दिनांक 18.01.1993 के जवाब दिनांक 04.02.1993 के बाद,

जांच अधिकारी द्वारा कोई जांच नहीं की गई। प्रावधानों के अनुरूप जांच करने के बजाय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 04.05.1993 को पत्र भेजकर कहा कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं। 18.01.1993 से 04.05.1993 के बीच कोई जांच नहीं हुई और याचिकाकर्ता को गवाहों से जिरह करने के लिए कभी नहीं बुलाया गया। याचिकाकर्ता ने जिन अभिलेखों या दस्तावेजों का निरीक्षण करने का अनुरोध किया है, उन्हें तलब नहीं किया गया या याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराया गया। ये दस्तावेज़ भी याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं थे. यहां तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जांच अधिकारी द्वारा उन दस्तावेजों का निरीक्षण या विचार भी नहीं किया गया। जिस तरह से अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई उससे प्रत्यर्थीगण पर गंभीर संदेह और कलंक लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि जांच के संचालन से पहले प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्ता से छुटकारा पाने का मन बना लिया था और इसी कारण से उन्होंने इतने लापरवाही से जांच की, जो सेवा न्यायशास्त्र में कहीं नहीं है।

12. जवाबी हलफनामे में, पैराग्राफ 19 और 25 में दिए गए कथनों का जवाब अपीलकर्ता-बैंक ने पैराग्राफ 18 और 24 में दिया, जो निम्नलिखित प्रभाव वाले हैं: -

> "18. रिट याचिका के पैरा संख्या 18 और 19 की सामग्री के जवाब में यह प्रस्तुत किया गया है कि जिन आधारों पर

जारी किए गए आरोप साबित हुए थे, वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति के अलावा याचिकाकर्ता को पत्र संख्या 251-52 अनुलग्नक संख्या 7 के माध्यम से प्रदान किए गए थे। आरोप पत्र एक जांच रिपोर्ट के उद्देश्य को पूरा करता है। यह कहना गलत है कि जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को कोई उचित अवसर नहीं दिया गया हो, दिनांक 06-01-1993 को रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5 को याचिकाकर्ता को यह जानने के लिए भेजा गया था कि क्या वह अपने गवाहों से जिरह करना चाहता है, लेकिन याचिकाकर्ता ऐसा कोई अवसर नहीं चाहता था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को कमेटी के सामने पेश होने का निर्देश दिया गया था, परन्तु वह प्रबंधन समिति में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हुए। संकल्प संख्या 14 दिनांक 25.11.1993 के अनुसार एक और अवसर दिया गया था, जो उनके द्वारा प्राप्त नहीं किया गया। याचिकाकर्ता को फिर से समिति के समक्ष उपस्थित होने का अवसर दिनांक 03-08-2000 को रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 के अनुसार व्यक्तिगत रूप से अपने मामले को समझाने के लिए दिया गया, लेकिन वह उपस्थित नहीं हुए। इसलिए, यह कहना पूरी तरह से गलत है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया

गया। संकल्प क्रमांक 14 दिनांक 25.11.1993 की प्रति अनुलग्नक क्रमांक सीए.5 के रूप में अंकित है, इसके साथ प्रतिशपथपत्र में संलग्न है।"

24. रिट याचिका के पैरा संख्या 25, 26, 27 और 28 की सामग्री को अस्वीकार किया जाता है। यह कहना गलत है कि दूसरा आरोप पत्र दिनांक 18-1-93 को उसी अनुशासनात्मक कार्यवाही में भेजा गया था क्योंकि वास्तव में यह पहला और एकमात्र आरोप पत्र जारी किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही 21.10.92 को शुरू की गई थी और इसलिए, याचिकाकर्ता को 18.1.93 को आरोप पत्र जारी किया गया था, जिसका जवाब याचिकाकर्ता द्वारा 4.2.93 को प्रस्तुत किया गया था। यह आरोप गलत है कि याचिकाकर्ता को रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं कराए गए क्योंकि याचिकाकर्ता किसी भी रिकॉर्ड का उल्लेख नहीं करना चाहता था और उसने गवाह से जिरह के दौरान भी कोई अनुरोध नहीं किया था। यह कहना भी गलत है कि याचिकाकर्ता को अवसर नहीं दिया गया। प्रत्यर्थी के द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करना उचित है, क्योंकि बैंक को लगभग 35,00,000/- रुपये का भारी नुकसान हुआ था, जो उसकी सभी शक्तियों से अधिक था और विभिन्न ग्रहाकों/ पार्टियों

को असुरक्षित अग्रिम देने में बैंक द्वारा निर्धारित सभी मानदंडों की अनदेखी थी, इसलिए याचिकाकर्ता की सेवाओं को खारिज करने का प्रत्यर्थीगण का आदेश वैध और न्याय के हित में है और याचिकाकर्ता की रिट याचिका केवल इसी आधार पर खारिज की जा सकती है।"

13. जैसा कि ऊपर बताया गया है, अपीलकर्ता/बैंक के विद्वान वकील ने जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 11.09.1992 को जारी पत्र का हवाला दिया है, जिसमें कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को 18.09.1992 को जांच अधिकारी के सामने पेश होने के लिए बुलाया गया था। जांच रिपोर्ट दिनांक 21.09.1992 में उल्लेख किया गया कि कर्मचारी/प्रत्यर्थी क्रमांक 1 उपस्थित नहीं हुआ, अतः जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। बैंक के द्वारा 18.11.1993 को एक नया आरोप पत्र जारी करने, जिसमें पूर्ववर्ती सभी आरोप शामिल थे, के उपरांत बैंक के द्वारा जारी पत्र दिनांक 11-09-1992 तथा जांच रिपोर्ट दिनांक 21-09-1992 अपनी महत्ता खो देते हैं। याचिकाकर्ता ने 04.02.1993 को एक जवाब प्रस्तुत किया लेकिन उसके बाद कोई जांच कार्यवाही नहीं हुई। कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 ने एक विशिष्ट शिकायत की कि जांच कार्यवाही नहीं की गई है और विनियम 85 का उल्लंघन किया गया है। अपीलकर्ता/बैंक द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष किसी भी जांच कार्यवाही या किसी जांच की तारीख का जिक्र करते हुए कोई विशिष्ट जवाब नहीं दिया गया है।

14. जैसा कि ऊपर बताया गया है, विनियम 85 एक वैधानिक विनियम है जिसके अनुसार कर्मचारी को अपने खर्च पर गवाहों को पेश करने या अपने बचाव में जिरह करने का अवसर दिया जाएगा और यदि वह चाहे तो उसे व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर भी दिया जाएगा। विनियमन 85(i)(बी) विशेष रूप से उक्त आवश्यकताओं को अनिवार्य करता है।

15. अभिवचनों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों से, यह स्पष्ट है कि दिनांक 16.01.1993 को आरोप पत्र जारी होने के बाद विनियम 85(i)(बी) के अनुरूप अपीलकर्ता/बैंक द्वारा कोई जांच नहीं की गई। उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद, कि बिना जांच किए कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को बर्खास्त कर दिया गया है, बर्खास्तगी आदेश को अपास्त कर दिया। अपील में यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं लाई गई है कि दिनांक 16.01.1993 के आरोप पत्र के बाद कोई जांच की गई थी या जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।

16. अपीलकर्ता/बैंक के विद्वान वकील ने जाहिर किया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित प्रस्ताव में उस जांच रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

17. अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधानों का पालन करने के बाद ही बैंक के किसी कर्मचारी पर कोई दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है, वह भी सेवा से बर्खास्तगी जैसा बड़ा दण्ड।

18. यह भी प्रासंगिक है कि दिनांक 04.02.1993 को जवाब प्रस्तुत करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 04.05.1993 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया और कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा। जब जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था, तो जांच करना अनिवार्य था और बिना जांच किए और कर्मचारी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को कोई जांच रिपोर्ट दिए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी कोई दंड देने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। अपीलकर्ता-बैंक द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन केवल औपचारिकता नहीं है, खासकर तब जब वैधानिक प्रावधान विशेष रूप से यह प्रावधान करते हैं कि अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उचित अनुपालन के साथ आयोजित की जाएगी।

19. आन्तरिक/अनुशासनात्मक जांच में प्राकृतिक न्याय का अनुपालन लंबे समय से स्थापित आवश्यक सिद्धांत है। यह न्यायालय पूर्व में भी यह कह चुका है कि भले ही प्राकृतिक न्याय के पालन की आवश्यकता वाले कोई विशिष्ट वैधानिक नियम नहीं हों, फिर भी प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है। कुछ आवश्यक तत्वों को जांच आयोजित

करने का अभिन्न अंग माना गया है। सुर इनेमल एंड स्टैम्पिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उनके कामगार (1964) 3 एससीआर 616 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है: -

> "...किसी जांच को उचित तरीके से तब तक नहीं माना जा सकता जब तक, (i) जिस कर्मचारी के खिलाफ कार्यवाही की गई है, उसे उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में स्पष्ट रूप से सूचित नहीं किया गया है, (ii) आरोपों के संबंध में गवाहों की परीक्षा, आमतौर पर कर्मचारी की उपस्थिति में नहीं की गई हो के (iii) कर्मचारी को गवाहों से जिरह करने का उचित अवसर दिया जाता है, (iv) यदि वह किसी प्रासंगिक मामले पर चाहे तो उसे अपने बचाव में खुद सहित गवाहों की परीक्षा करने का उचित अवसर दिया जाता है, और (v) जांच अधिकारी अपनी रिपोर्ट में कारणों सहित अपने निष्कर्षों को दर्ज करता है।"

20.सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से भारतीय स्टेट बैंक बनाम आर.के. जैन और अन्य (1972) 4 एससीसी 304 में कहा है कि यदि कोई जांच, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से दूषित हो जाती है या यदि अपचारी को अपना बचाव करने के लिए कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया है, तो इसे प्राकृतिक न्याय के

नियमों के अनुसार आयोजित उचित आन्तरिक जांच के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। मद संख्या 23 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया था: -

> "........जैसा कि इस न्यायालय ने आनंद बाजार पत्रिका (पी) लिमिटेड बनाम इसके कामगार, (1964) 3 एससीआर 601 कहा है कि किसी कर्मचारी की सेवा की समाप्ति प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार ही उचित विभागीय जांच के अनुसरण में की जानी चाहिए, इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से दूषित हो गई है या यदि अपचारी को अपना बचाव करने के लिए कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया है, तो इसे प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार आयोजित उचित विभागीय जांच के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है..."

21. उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (2008) 8 एससीसी 236 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को प्राकृतिक न्याय के विभिन्न आयामों की व्याख्या करने का अवसर मिला, जिन्हें एक विभागीय जांच में निर्दिष्ट करने की आवश्यकता होती है। पैरा 9, 10, 11, 12, 13

और 15 को यहां संदर्भित करना उपयोगी है, जो निम्नलिखित प्रभाव वाले हैं: -

> "...9. उपरोक्त प्रस्तुतियों की सत्यता का विश्लेषण करने से पहले, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख करना उपयोगी है कि जांच कैसे की जानी है और किन प्रक्रियाओं का पालन किया जाना है।
>
> 10. एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम कामगार एवं अन्य [1964] 3 **SCR 652** के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित निम्नलिखित अवलोकन और सिद्धांत प्रासंगिक हैं -
>
> "......वर्तमान मामले में, पहली गंभीर कमजोरी जिससे जांच प्रभावित होती है वह इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि तीन जांच अधिकारियों ने दावा किया कि उन्होंने स्वयं मलक राम के कथित कदाचार को देखा था। श्री कोलाह का तर्क है कि यदि प्रबंधक और अन्य अधिकारियों ने मलक राम को कदाचार का कार्य करते हुए देखा, तो यह उन्हें घरेलू जांच करने से अयोग्य नहीं ठहराएगा। हम इस तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि कोई अधिकारी स्वयं किसी कर्मी के कदाचार को देखता है, तो यह वांछनीय है कि जांच किसी अन्य व्यक्ति पर छोड़ दी जानी चाहिए जो विवादित

घटना का प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा नहीं करता है। जैसा कि हमने बार-बार जोर दिया है, घरेलू जांच ईमानदारी से और सद``भावी रूप से की जानी चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि किसी विशेष कर्मचारी के खिलाफ लगाया गया आरोप साबित हुआ है या नहीं, और इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये जांच खोखली औपचारिकताएं न बन जाएं। यदि कोई अधिकारी दावा करता है कि उसने स्वयं किसी कर्मचारी के खिलाफ कथित कदाचार को देखा है, तो निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए यह कदम उठाए जाने चाहिए कि जांच करने का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए। जांच अधिकारी द्वारा दावा किया गया ज्ञान, कैसे जांच की पूरी कार्यवाही को ख़राब कर सकता है, यह वर्तमान जांच से ही स्पष्ट हो जाता है...

..........इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि विभागीय जांच में, नियोक्ता को पहले आरोपित कर्मचारी के खिलाफ सबूत पेश करने के लिए कदम उठाना चाहिए, कर्मचारी को उक्त साक्ष्य से जिरह करने का अवसर देना चाहिए और फिर कामगार से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह अपने ख़िलाफ़ सबूतों के बारे में स्पष्टीकरण देना चाहता है। हमें ऐसा

लगता है कि औद्योगिक कर्मचारियों के खिलाफ घरेलू जांच में यह उचित नहीं है कि उसके खिलाफ अन्य साक्ष्य पेश करने से पहले ही जांच की शुरुआत में ही कर्मचारी से बारीकी से जिरह की जाए। ऐसे औद्योगिक मामलों में की गई विभागीय जांच से निपटने में, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अधिकांश मामलों में, कर्मचारियों के अज्ञानी होने की संभावना है, और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाया गया तरीका से जिरह के जोखिम में न डाला जाए। इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री सुले यह तर्क देने में सही हैं कि वर्तमान जांच कार्यवाही में अपनाया गया तरीका जिसके द्वारा शुरुआत में ही मलक राम से विस्तृत जिरह की गई, वह इस जांच में एक और कमजोरी है।"

11) ई.सी.आई.एल. बनाम बी करुणाकर (1993) 4 एससीसी 727 में, यह कहा किया गया था -

"(1) जहां जांच अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अलावा अन्य है, अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित होती है। पहला चरण तब समाप्त होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, जांच अधिकारी की रिपोर्ट

और अपचारी कर्मचारी के जवाब के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्षों के आधार पर दण्ड लगाने का निर्णय लेता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, अनुशासनात्मक कार्यवाही को रोकने का निर्णय लेता है, तो दूसरे चरण तक भी नहीं पहुंचा जाता है।

जबकि रिपोर्ट में निष्कर्षों के खिलाफ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अधिकार जांच के पहले चरण के दौरान उपलब्ध सुनवाई हेतु उचित अवसर का हिस्सा है, जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने रिपोर्ट में निष्कर्षों पर विचार किया है और कर्मचारी के दोषी होने के संबंध में निष्कर्ष पर आया है और अपने निष्कर्षों के आधार पर दण्ड देने का प्रस्ताव करता है तब अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा रिपोर्ट में निष्कर्षों पर विचार करने से पहले, प्रस्तावित दंड के खिलाफ कारण बताने का अधिकार, दूसरे चरण से संबंधित है। पहला अधिकार है बेगुनाही साबित करने का अधिकार, दूसरा अधिकार यह है कि दोषी होने के संबंध में निष्कर्ष स्वीकार कर लिया जाता है तब या तो कोई दण्ड न दिया जाए या कम कम दण्ड दिया जाए। यह दूसरे चरण में प्रयोग किया जाने वाला दूसरा अधिकार है जिसे बयालीसवें

संशोधन द्वारा छीन लिया गया। दूसरे चरण में प्रस्तावित दण्ड के खिलाफ कारण बताने के लिए नोटिस जारी करना और नोटिस के जवाब पर विचार करना और दण्ड पर निर्णय लेना शामिल है। प्रस्तावित दंड पर अभ्यावेदन देने का अवसर दिया गया है, न कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर अभ्यावेदन देने का अवसर दिया गया है। बाद वाला अधिकार हमेशा दिया गया था, लेकिन संविधान के बयालीसवें संशोधन से पहले, जिस समय इसका प्रयोग किया जाना था, उसे दूसरे चरण यानी दंड पर विचार करने के चरण तक के लिए स्थगित कर दिया गया था। उस समय तक, कर्मचारी के दोषी होने और दिए जाने वाले दंड दोनों के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचे थे, वह केवल अस्थायी था। संविधान के बयालीसवें संशोधन के बाद जो कुछ हुआ है वह उस समय को आगे बढ़ाने के लिए है जब जांच अधिकारी की रिपोर्ट के खिलाफ कर्मचारी के अभ्यावेदन पर विचार किया जाएगा। अब, आरोपों के संबंध में उसके दोषी होने या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले अनुशासनात्मक प्राधिकारी को रिपोर्ट के खिलाफ कर्मचारी के अभ्यावेदन पर विचार करना होगा।

* * *

अनुच्छेद 311(2) कहता है कि कर्मचारी को "उसके खिलाफ लगे आरोपों के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर" दिया जाएगा। जांच अधिकारी की तरह किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा आरोपों पर दिए गए निष्कर्ष, खासकर जब वे सबूतों के आधार पर नहीं होते हैं या सबूतों को नजरअंदाज करके या गलत तरीके से निकाले जाते हैं, तो वे स्वयं नए अनुचित आरोप बन सकते हैं। अनुच्छेद 311(2) का प्रावधान वास्तव में अलग-अलग दायरे के दो क्रमिक चरणों को स्वीकार करता है। चूंकि दंड का प्रस्ताव जांच के बाद किया जाना है, जो वास्तव में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्णित जानी है (जांच अधिकारी केवल उसका प्रतिनिधि है जिसे जांच करने और उसकी सहायता करने के लिए नियुक्त किया गया है), जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर कर्मचारी के द्वारा प्रस्तुत जवाब पर अनुशानात्मक प्राधिकारी के द्वारा विचार करना ऐसी जांच का एक अभिन्न अंग है।

इसलिए, जब जांच अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, तो दोषी कर्मचारी को, आरोपों के संबंध में कर्मचारी के दोषसिद्धि या निर्दोषता के संबंध में

अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार है। यह अधिकार कर्मचारी के अपने ऊपर लगे आरोपों से बचाव करने के अधिकार का एक हिस्सा है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट नहीं दिया जाना, कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित करना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।"

12) राधेश्याम गुप्ता बनाम यू.पी. स्टेट एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य, (1999) 2 एससीसी 21, यह कहा किया गया था:

"34. लेकिन ऐसे मामलों में जहां बर्खास्तगी जांच से पहले होती है और बर्खास्तगी के बाद अधिकारी के विरूद्ध साक्ष्य प्राप्त की जाती है एवं निश्चित प्रकृति के कदाचार के निष्कर्ष निकाले जाते हैं और जहां ऐसी रिपोर्ट के आधार पर, बर्खास्तगी आदेश जारी किया गया, यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा क्योंकि ऐसी जांच का उद्देश्य उसे दंडित करने के उद्देश्य से आरोपों की सच्चाई का पता

लगाना है, न कि केवल भविष्य में नियमित विभागीय जांच के लिए सबूत इकट्ठा करना है। ऐसे मामलों में, बर्खास्तगी को कदाचार पर आधारित माना जाएगा और दंडात्मक होगा। ये स्पष्ट रूप से ऐसे मामले नहीं हैं। जहां नियोक्ता को लगता है कि कर्मचारी के आचरण के खिलाफ कोई संदेह है, लेकिन ऐसे मामले हैं जहां कि जांच अधिकारी के द्वारा कर्मचारी की पीठ के पीछे लिए गए निश्चित और स्पष्ट निष्कर्षों को वस्तुत नियोक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया है - भले ही निष्कर्षों की ऐसी स्वीकृति बर्खास्तगी के आदेश में दर्ज नहीं की गई है, इसीलिए ऐसे मामलों में कदाचार बुनियाद है न कि केवल उद्देश्य।

13) सिंडिकेट बैंक और अन्य बनाम वेंकटेश गुरुराव कुराती, (2006) 3 एससीसी 150 में, निम्नलिखित निष्कर्ष प्रासंगिक है:

"18. हमारे विचार में, उन दस्तावेजों की आपूर्ति न करना जिन पर जांच के दौरान जांच अधिकारी भरोसा नहीं करता है, अपचारी के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं करता है। यह केवल वे दस्तावेज हैं, जिन पर जांच अधिकारी अपने निष्कर्ष में भरोसा करता है, इनकी आपूर्ति न करना पूर्वाग्रह

का कारण होगा तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। फिर भी, उन दस्तावेजों की आपूर्ति न करना अपचारी अधिकारी के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, यह उस अपचारी, अधिकारी द्वारा साबित किया जाना चाहिए। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सिद्धांत सन्निहित नियम नहीं है। इसे एक निश्चित सीमाओं वाले सूत्र के रूप में नहीं रखा जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोप को साबित करने के लिए उस व्यक्ति को यह स्थापित करना होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण वह पूर्वाग्रहित हुआ है।

15. उपरोक्त निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं -

(i) जांच सद्भावी पूवर्क की जानी चाहिए और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जांच खोखली औपचारिकता न बन जाए।

(ii) यदि कोई अधिकारी किसी ऐसी घटना का गवाह है जो जांच का विषय है या यदि किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर जांच शुरू की गई थी, तो पूरी निष्पक्षता हेतु उसे जांच अधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि जांच

अधिकारी की नियुक्ति के बाद जांच के दौरान उक्त स्थिति जानकारी में आती है तो यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि जांच का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए।

(iii) किसी जांच में, नियोक्ता/विभाग को सबसे पहले आरोपित कर्मचारी/अपचारी के खिलाफ सबूत पेश करने के लिए कदम उठाना चाहिए और उसे नियोक्ता के गवाहों से जिरह करने का अवसर देना चाहिए। इसके बाद ही, कामगार/अपचारी से पूछा जाएगा कि क्या वह कोई साक्ष्य पेश करना चाहता है और उसके खिलाफ पेश की गई साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देना चाहता है।

(iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे बढ़ने से पहले, अनुशासनात्मक/दंड प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह जांच रिपोर्ट की एक प्रति और जांच अधिकारी द्वारा भरोसा की गई सभी संबंधित सामग्री उसे प्रदान करें, जिससे कि वह अपना पक्ष, यदि कोई हो, रखने में समर्थ हो सके।

22. शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून की स्थिति और वर्तमान मामले के तथ्यों से, हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं: -

(A) आरोप पत्र दिनांक 16.01.1993 देने के बाद हालांकि याचिकाकर्ताओं ने 04.02.1993 को अपना जवाब प्रस्तुत किया लेकिन न

तो जांच अधिकारी ने मौखिक जांच हेतु कोई तारीख तय की और न ही जांच अधिकारी द्वारा कोई जांच की गई।

(B) अपचारी के द्वारा आरोपों से इन्कार करने के बाद जांच करने तथा उसे जांच प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध करवाने का इस मामले में उल्लंघन किया गया है, जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए आज्ञापक आवश्यकता है।

(C) कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को अपने बचाव में गवाह पेश करने का अवसर नहीं दिया गया, और व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया गया, जिससे विनियम 85 (i) (बी) में निहित वैधानिक प्रावधान, का उल्लंघन किया गया है।

(D) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने बिना किसी जांच के कर्मचारी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांक 04.05.1993 को कारण बताओ नोटिस जारी किया और उसके बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा वर्ष 2000 में कोई और कदम उठाए बिना लिया गया निर्णय ठहरने योग्य नहीं है। उच्च न्यायालय ने बैंक को, यदि वह चाहे तो छह महीने की अवधि के भीतर नए सिरे से जांच करने की छूट देकर बर्खास्तगी आदेश को सही ढंग से रद्द किया है।

(E) बैंक, फैसले के पैराग्राफ (1) में उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसार अनुशासनात्मक जांच आगे बढ़ाने के लिए स्वतंत्र होगा। उच्च

न्यायालय पहले ही कह चुका है कि याचिकाकर्ता को निलंबित माना जाएगा और उसे नियमों के मुताबिक निलंबन भत्ता दिया जाएगा।

23. उपरोक्त चर्चा और हमारे निष्कर्ष के मद्देनजर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हम इस अपील में कोई योग्यता नहीं पाते है। परिणामस्वरूप, अपील खारिज की जाती है।

कल्पना के.त्रिपाठी अपील खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **सत्यपाल वर्मा** (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।